मेरी शिक्षण-पद्धति

❑ डॉ. ए. के. जलालुद्दीन

डॉ. ए.के. जलालुद्दीन भारत के जाने-माने शिक्षाविद् हैं । वैसे आपका उच्च अध्ययन एवं शोध कार्य तो भौतिकी में रहा है । पर भारत एवं विदेश में शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष कर प्राथमिक शिक्षा की बेहतरी के लिए, आपने बहुत काम किया है । आप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् में संयुक्त निदेशक के पद पर भी रहे हैं। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में भी आपने लंबे समय तक काम किया तथा लिटरेसी हाउस, लखनऊ में निदेशक भी रहे हैं । अभी कई संस्थाओं को स्वतंत्र रूप से परामर्श दे रहे हैं एवं प्राथमिक शिक्षा की बेहतरी के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों से जुड़े हैं ।

आपकी विशेषता है - शिक्षा-शास्त्र का विस्तृत एवं गहन अध्ययन एवं उस अध्ययन को सीधे व्यावहारिक कक्षा-शिक्षण से जोड़ कर देखना । शिक्षा-शास्त्र के विश्वकोषीय ज्ञान के बावजूद आप एक सतत शिक्षार्थी हैं और अपने ज्ञान से लोगों को डराते नहीं उनका उत्साह बढ़ाते हैं, उनकी दृष्टि को परिमार्जित करने में मददगार साबित होते हैं ।

यह दिगन्तर, जयपुर में आयोजित (अप्रैल, 98) शिक्षा -विमर्श पर चौथा व्याख्यान था, जिसका संपूर्ण सार किंचित संपादित रूप में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने हिन्दी में व्याख्यान शुरू करते हुए कहा कि उनकी हिन्दी वैसे तो कभी भी उतनी अच्छी नहीं थी, लेकिन अब चूंकि वे दो ढाई साल से बंगला-देश में काम कर रहे हैं तो हिन्दी पर बंगला का असर और प्रभावी हो गया है । फिर भी वे हिन्दी में अपनी बात कहने की कोशिश करेंगे ।

अपने काम के बारे में बताते हुए डा. जलालुद्दीन ने कहा कि उनका काम प्राथमिक शिक्षा पर केन्द्रित है, हालांकि वे साक्षरता कार्यक्रम से भी जुड़े रहे हैं : वे बंगला देश के दो स्वयंसेवी संगठनों - बंगलादेश रूरल एडवांसमेंट कमेटी (ब्रॉक) और गणसहज्जो संस्थान (जी.एस.एस.) के साथ काम कर रहे हैं । जहां काम कर रहे हैं उनमें ब्रॉक के 162 प्राथमिक विद्यालय और जी. एस. एस. के 400 प्राथमिक विद्यालय हैं। उनका काम शिक्षण विधियों (पेडॉगॉजी) से संबंद्ध है ।

असल में, वृहद स्तर पर नवाचार किसी भी पद्धति- प्रसार पद्धति, क्रियान्वयन पद्धति या सुधार पद्धति से लागू हो नहीं पा रहा है । यह प्रश्न है कि वृहत् तंत्र को हम कैसे हिलायें ?

एक भिन्न तरह का शोध

डा. जलालुद्दीन ने कहा कि उनका काम एक प्रकार का शोध-कार्य है । वे कहते हैं कि परंपरागत शोध में हम एक परिकल्पना लेते हैं, फिर तथ्य संकलन करके उनका विश्लेषण करते हैं लेकिन उनका शोध कुछ भिन्न तरह का है और उसमें एक निरंतरता है ।

हमारी जो स्कूल प्रणाली है, उसके अपने कुछ मापदण्ड हैं । वे बच्चे के सीखने की न्यूनतम अपेक्षाओं पर आधारित हैं । जबकि बच्चों की क्षमताएं कहीं ज्यादा होती हैं । डा. जलालुद्दीन इस क्षेत्र में अनुसंधान कर रहे हैं कि बच्चे कैसे कम समय में अधिक चीजें सीख सकते हैं । उनका विश्वास है कि बच्चे मौजूदा गति से कई गुना तीव्र गति से बहुत अच्छे ढंग से और खुशी खुशी सीख सकते हैं । इस तरह के विचारों का वे बच्चों के साथ परीक्षण करते रहते हैं । इसके अन्तर्गत

गहराई से यह देखना होता है कि बच्चे किस तरह आगे बढ़ रहे हैं । उसे समझते हुए बच्चों के साथ काम करना होता है । इसमें बच्चे खुशी से सीखते हैं, नई-नई बातें और काम सीखते हैं और उन्हें सिखाते हुए हम खुद भी सीखते हैं ।

शोध का दूसरा क्षेत्र है : इंग्लैण्ड और यूरोप में पिछले दो-तीन दशक से अधिक समय से एक आंदोलन चला है - आनंददायी शिक्षा का । अभी आनंदप्रद शिक्षा का यह आन्दोलन यूनीसेफ की मदद से भारत में भी चल रहा है । कई स्वयंसेवी संस्थाएं इसे अपनी अपनी तरह से चला रही हैं । आनंदप्रद शिक्षण पहली-दूसरी कक्षाओं में शुरू होता है और वहीं खत्म हो जाता है । इसके बाद जब शिक्षाक्रम आधारित, पाठ्य-पुस्तक आधारित शिक्षण शुरू होता है तो उसको कैसे आनंदप्रद बनायें, इसके लिए कैसे संघर्ष करें - इस दिशा में सोचने वाले बहुत कम लोग हैं।

कक्षा दो से आगे पांचवी तक पढ़ने-लिखने में जब ज्ञान-आधारित, पाठ्यपुस्तक आधारित शिक्षण होता है, उसमें गतिविधि आधारित शिक्षण पद्धति और खेल-पद्धतियों का इस्तेमाल कैसे होगा ? यह प्रश्न है । संज्ञानात्मक क्षेत्र में बच्चे के चिंतन, विवेक और सृजनात्मकता के क्षेत्र में शिक्षण के आनंदप्रद बनाने के तरीके सामान्यत: बाह्य उपकरणों पर निर्भर हैं । मगर यह सम्पर्क इतना गहरा सम्पर्क नहीं है जितना कि बच्चे से आन्तरिक सम्पर्क है ।

बच्चे के चिंतन की अपनी ही दुनिया है, सोचने के अपने तरीके हैं, सीखने की अपनी शैली है जिसे बच्चे के ज्ञान और विचार की संरचना कहते हैं । वहां जाकर सीखने को कैसे आनंदप्रद बना सकते हैं, इसकी जानकारी बाह्य भौतिक उपकरणों से नहीं होगी । यह जानकारी तब होगी, जब हम बच्चे के आंतरिक विकास को समझेंगे। तो इन दोनों तरह से हम यह संपर्क स्थापित कर सकते हैं । डा. जलालुद्दीन के अनुसार यह उनके शोध-कार्य का दूसरा क्षेत्र है कि कैसे कक्षा 3 से पांचवी के स्तर तक के पाठ्य-पुस्तक आधारित शिक्षण को अधिक आनंदप्रद बनाया जा सकता है जिसकी रणनीतियां संज्ञानात्मक हों । जो अब तक प्रचलित खेल-गतिविधियों और बाह्य-उपकरणों पर ही आश्रित न हों ।

स्थापित प्रणाली में सुधार के लिए जो उपकरणात्मक परिवर्तन किये जाते हैं, शिक्षक और शिक्षाक्रम में बदलाव किये जाते हैं– अन्तत: उनका कोई नतीजा नहीं निकलता । क्योंकि नियंत्रणकारी परम्परागत अधिक्रमिक तंत्र के वर्चस्व में आमूल–चूल परिवर्तन का कोई विचार वहां नहीं होता ।

बच्चे के चिंतन की अपनी ही दुनियां है, सोचने के अपने तरीके हैं, सीखने की अपनी शैली है जिसे बच्चे के ज्ञान और विचार की संरचना कहते हैं । वहां जाकर सीखने को कैसे आनंदप्रद बना सकते हैं, इसकी जानकारी बाह्य भौतिक उपकरणों से नहीं होगी । यह जानकारी तब होगी, जब हम बच्चे के आंतरिक विकास को समझेंगे। तो इन दोनों तरह से हम यह संपर्क स्थापित कर सकते हैं ।

वृहत् प्रणाली में हस्तक्षेप : अस्थिरता और द्वन्द्व

एक सवाल यह है कि शिक्षा में जो नवाचार एक या दो स्कूल अथवा 100 स्कूलों में किया जाता है, उसे इसकी तमाम विशेषताओं के साथ राष्ट्रीय स्तर पर वृहत् तंत्र में कैसे क्रियान्वित किया जाये । सामान्यत: किसी एक खूबसूरत शैक्षिक नवाचार को एक और संकुल में शुरू कर दिया जाता है । इस प्रकार इसके फैलाव की गति बहुत धीमी होती है । असल में, वृहत् स्तर पर नवाचार किसी भी पद्धति-प्रसार पद्धति, क्रियान्वयन पद्धति या सुधार पद्धति से लागू हो नहीं पा रहा है । यह प्रश्न है कि वृहत् तंत्र को हम कैसे हिलायें ?

डॉ. जलालुद्दीन इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि समूची प्रणाली को आलोड़ित किया जाये । किसी भी प्रणाली पर यह प्रहार बाहर से बम फेंककर नहीं किया जा सकता । इसके लिए जरूरी है कि हम उसके अंदर घुसकर एक आलोड़न पैदा करें । हर स्कूल के प्रत्येक शिक्षक के मन में, प्रशिक्षण कार्यक्रमों में इस दर्शन और विचारों को लेकर संशय पैदा कर दें, जिन पर पूरा परंपरागत शिक्षा-तंत्र टिका हुआ है । इससे यह तंत्र शिथिल होता हुआ भरभरा कर गिर पड़ेगा ।

इस शंका को खड़ा करने की एक वजह है । स्थापित प्रणाली में सुधार के लिए जो उपकरणात्मक परिवर्तन किये जाते हैं, शिक्षक और शिक्षाक्रम में बदलाव किये जाते हैं-अन्तत: उनका कोई नतीजा नहीं निकलता । क्योंकि नियंत्रणकारी परम्परागत अधिक्रमिक तंत्र के वर्चस्व में आमूल-चूल परिवर्तन का कोई विचार वहां नहीं होता ।

डा. जलालुद्दीन ने ब्रॉक की वृहत् शिक्षा प्रणाली में हस्तक्षेप आरंभ किया जिसके अन्तर्गत

34 हजार प्राथमिक विद्यालय हैं । उन का शिक्षा-प्रयोग 162 स्कूलों में आरंभ हुआ जिनमें 100 स्कूलों में यह पहली श्रेणी और 62 में दूसरी श्रेणी के स्तर तक पहुंचा है । अभी पहली श्रेणी दूसरी में, दूसरी तीसरी श्रेणी में क्रमोन्नत हुई है । अगले साल तीसरी श्रेणी चौथी में क्रमोन्नत हो जायगी।

जिन 162 स्कूलों में डा. जलालुद्दीन काम कर रहे हैं, उनके पर्यवेक्षक वही हैं जो इन स्कूलों के साथ अन्य दूसरे स्कूलों का भी पर्यवेक्षण करते हैं । तंत्र की सामान्य सूचना प्रणाली इन 162 स्कूलों पर भी लागू होती है । लेकिन इन स्कूलों में भिन्न शिक्षण पद्धति अपनाई गयी है और स्थापित नियंत्रण प्रणाली का सहारा लेते हुए इस शिक्षण पद्धति को संरक्षित रखा गया है । लेकिन इस नयी शिक्षण-पद्धति से समूची प्रणाली में एक द्वन्द्व पैदा हो गया है । इन स्कूलों को देखने वाले पर्यवेक्षक अन्य स्कूल भी देखते हैं । वे सुबह ऐसे एक स्कूल में जाकर कहते हैं 'यह शिक्षण पद्धति अच्छी है' फिर शाम को अन्य तरह के स्कूल में जाकर भी यही कहते हैं, लेकिन हिचकिचाते हैं, सुबह जो देखा, ठीक वही शाम के बारे में नहीं कहा जा सकता ।

इसी प्रकार प्रबंधकों के मन में भी एक द्वन्द्व पैदा हो गया कि हम कैसा प्रबंध कर रहे हैं ? क्या हम परिवर्तन चाहते हैं ? या फिर यथास्थिति को बनाए रखना है ? डा. जलालुद्दीन कहते हैं कि यह द्वन्द्व और अस्थिरता हमने जानबूझ कर उत्पन्न की है । ताकि सबके मन में संशय पैदा हो जाये, खंडित मन:स्थिति बन जाये ।

प्रबन्धक देखते हैं कि दोनों मामलों में वही हम कर रहे हैं, वही बच्चे कर रहे हैं लेकिन एक तरफ तो बच्चों ने पहली कक्षा में दूसरी कक्षा की किताब खत्म कर ली और आगे लिखने-पढ़ने और गणित की किताब की मांग कर रहे हैं । वे बच्चे कह रहे हैं 'हमें और दो' और दूसरे बच्चे कह रहे हैं, 'हम अभी नहीं पढ़ पायेंगे ?' यहां बच्चा कहता है, 'मैंने 34 पृष्ठ पढ़े हैं, 35 वां पेज में नहीं पढ़ पाऊंगा' । उससे कहते हैं '36 वां तो पढ़ लोगे', वो कहता है 'नहीं, मैं तो 34 पर हूँ,' शिक्षक कहते हैं, 'ये नहीं पढ़ पायेंगे'।

जबकि डा. जलालुद्दीन के शिक्षा प्रयोग में बच्चे कहते हैं, 'हमें जो कुछ दोगे, उसमें कुछ न कुछ पढ़ लेंगे - भले ही सब कुछ नहीं पढ़ पायें । उन्हें अखबार देते हैं, वे अखबार पढ़ लेते हैं ।

इस स्थिति ने एक द्वन्द्व पैदा कर दिया है । और यह द्वन्द्व मुख्यधारा शिक्षा में कोई सुधार लाकर नहीं किया जा रहा बल्कि इसे आलोड़ित करके किया जा रहा है । डॉ. जलालुद्दीन बताते हैं कि ये तरीका उन्होंने प्रबंध से लिया है - 'पहले अस्थिरता पैदा करो और फिर चीजों को नये सिरे से दृढ़ करो।'

तंत्र की जो ऊपर से नीचे तक की अधिक्रमिक संरचना है, उसमें अस्थिरता कैसे पैदा की जाये, संशय कैसे पैदा करें ? इस तरह संशय पैदा करना कि कहीं एक उम्मीद भी बनी रहे, 'ये भी हो सकता है, ये भी कर सकते हैं? लोगों को इस उम्मीद की ओर खींच कर लाया जाता है कि आओ, ये जो एक तरीका है - इसे अपनायें यह प्रबंध में उत्पादन की गुणवत्ता का, कार्पोरेट क्षेत्र में अपनाया जाने वाला तरीका है, जिसे डॉ. जलालुद्दीन शैक्षिक प्रबंध में लाये हैं ।

परंपरागत प्रबंध में नियंत्रण का एक नजरिया है जो शीर्ष से नीचे तक व्याप्त है । शैक्षिक प्रबंध में यह नजरिया बच्चे तक में पाया जाता है, वह बिना निर्देशित किये एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता। डॉ. जलालुद्दीन ने नियंत्रण के इस नजरिये को हटा दिया है । वहां बच्चे खुद पढ़ते हैं और पढ़ना चाहते हैं । परंपरागत प्रबंध में तो पर्यवेक्षक यह देखने ही जाते हैं कि बच्चे पढ़ रहे हैं या नहीं, शिक्षक पढ़ा रहे हैं या नहीं । अब जब यह हो रहा है तो पर्यवेक्षक क्या करेंगे - यह उनसे पूछा जाता है । अब उनके पास वहां दे सकने के लिए कुछ है या नहीं और यदि नहीं है तो उनके वहां

इसी तरह इस समय जो शिक्षा–प्रणाली है, उसके ऊपर एक सांस्कृतिक प्रणाली है । हर कोई सोचता है कि इधर–उधर थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लो तो कुल मिलाकर यह ठीक है । लेकिन आप प्रणाली द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता और स्वायत्तता का उपयोग करते हुए बिना उनसे कुछ विशेष मांग किये स्थापित प्रणाली के भीतर ही एक अधिक प्रभावी शिक्षा का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, जब पूरा देश यह देखेगा कि शिक्षक को अधिक स्वायत्तता देने, प्रयोगशीलता, विकेन्द्रीकरण और भिन्न वैचारिकता के कारण यह संभव हो सकता है तो शिक्षा नीति के समग्र सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य पर संदेह उठ खड़ा होता है ।

जाने का फायदा क्या है ? उनके न जाने से भी सब कुछ चल ही रहा है । तो पर्यवेक्षक की नयी भूमिका निकल कर सामने आयी है, उसे नये सिरे से तैयारी करके स्कूलों में जाना होता है।

मुक्त चिंतन का ऐसा ही क्षेत्र शिक्षकों के मन में उत्पन्न किया गया है । प्रबंधकों ने उन्हें मुक्त करने पर सवाल उठाया कि यदि उन्हें नियंत्रित नहीं किया गया तो वे स्कूल आयेंगे नहीं, आयेंगे तो ढंग से पढ़ायेंगे नहीं । डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि इन्हें छूट दे दीजिए । छूट दिए जाने पर एकाध तो शायद घर पर बैठे रहेंगे लेकिन निश्चित दिशा और मकसद दिये जाने पर उनमें से अधिकांश ऊर्जावान हो जायेंगे ।

डॉ. जलालुद्दीन का कहना है कि उन्होंने बच्चों को कक्षा में खुद-ब-खुद विभिन्न तरीकों से सीखने की छूट दी है । इससे शिक्षकों को भी स्वतंत्रता और अवसर देना लाजिमी हो जाता है । फिर ऐसी ही स्वतंत्रता स्थापित प्रबंध तंत्र में पर्यवेक्षकों के लिए उत्पन्न की गयी है । इसका अर्थ है, प्रत्येक स्तर पर स्वतंत्र सोच और पहलकदमी के लिए स्वायत्तता और अवसर उपलब्ध करवाना। मौजूदा भिन्न शिक्षण-पद्धति ने प्रबंध के हर पहलू-सूक्ष्म-योजना, व्यापक योजना और बजट को अपनी तरह से प्रभावित किया है जो पूरी तरह से गैर-परंपरागत है ।

बच्चों को ऐसा काम दिया जाये जिसका परिणाम परिलक्षित हो । बेतरतीव काम का परिणाम भी बेतरतीव होगा । काम परिलक्षित होगा तो हर दिन आखिर में मूल्यांकन संभव होगा । इस तरह साप्ताहिक और मासिक मूल्यांकन से समूचे कार्यक्रम की प्रगति का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है । शिक्षकों के प्रशिक्षण में यह अहम् मुद्दा था कि वे कैसे कक्षा में काम का वातावरण पैदा कर सकते हैं ? कैसे काम को बांटेंगे और बच्चे को काम में कैसे मदद करेंगे?

इसका मतलब हुआ कि कक्षा में क्या घटित होता है (अर्थात शिक्षण पद्धति), इससे शिक्षा की राष्ट्रीय और शीर्ष स्तर तक की नीतियां प्रभावित होती हैं । ये एक भिन्न प्रकार का शोध है जो डॉ. जलालुद्दीन कर रहे हैं । उनका कहना है कि ये तीनों प्रकार के शोध परस्पर संबद्ध हैं और वे रात-दिन इन्हीं में डूबे रहते हैं और चूंकि वे उन्हें डूबकर जी रहे हैं इसलिए इन पर लिख पाना अभी तक संभव नहीं हुआ है ।

प्रणाली में अस्थिरता और द्वन्द्व से जुड़े एक सवाल के जबाव में सोवियत संघ के पतन का उदाहरण रखते हुए डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि बाहर से तो सोवियत संघ बहुत सक्षम लगता था, फिर इस तरह ढह कैसे गया ? उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में अति केन्द्रीकृत तंत्र था जो भय के आदर्श पर खड़ा था । इसे औचित्य प्रदान करने के लिए एक विचारधारा थी । पाश्चात्य जगत प्रत्यक्ष प्रहार से इसे नहीं तोड़ सकता था। उसने भौतिक जगत की जगह मानसिक जगत में प्रवेश करने का निश्चय किया। उसने पोलित ब्यूरो में गोर्बाचोव के मन में संशय पैदा किया कि क्या सही और क्या गलत है ? अन्तर्राष्ट्रीय जगत से कदम मिलाकर चलने के लिए हम क्या करें ?

जब गोर्बाचोव ने पेरेस्त्रोइका और ग्लासनोस्त के अंतर्गत उदारवाद की प्रक्रिया शुरू की तो वह यही कहते थे कि साम्यवाद को और मजबूत करने के लिए यह सब किया जा रहा है । लेकिन संदेह का बीज पड़ चुका था । अतिवादी विचारधारा और उन्मुक्तता के मध्य द्वन्द्व जो पहले ही धीमी गति से चल रहा था, सेना और समाज पर सैद्धांतिक पकड़ के शिथिल पड़ते ही तीव्र हो गया । इस बारे में माओ बराबर कहते थे कि संशोधनवाद के चलते सोवियत संघ एक दिन ढह जायेगा। इसलिए उन्होने सांस्कृतिक क्रान्ति का अभियान चलाया । जब स्थापित प्रणाली को आप कायम नहीं रख सकते, नयी प्रणाली की ओर जा नहीं रहे तो अवसर आने पर एक नयी प्रणाली उभर आती है ।

इसी तरह इस समय जो शिक्षा-प्रणाली है, उसके ऊपर एक सांस्कृतिक प्रणाली है । हर कोई सोचता है कि इधर-उधर थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लो तो कुल मिलाकर यह ठीक है । लेकिन आप प्रणाली द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता और स्वायत्तता का उपयोग करते हुए बिना उनसे कुछ विशेष मांग किये स्थापित प्रणाली के भीतर ही एक अधिक प्रभावी शिक्षा का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, जब पूरा देश यह देखेगा कि शिक्षक को अधिक स्वायत्तता देने, प्रयोगशीलता, विकेन्द्रीकरण और भिन्न वैचारिकता के कारण यह संभव हो सकता है तो शिक्षा नीति के समग्र सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य पर संदेह

उठ खड़ा होता है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने भारतीय शिक्षा नीति पर अनिल सद्गोपाल के व्याख्यान का संदर्भ देते हुए कहा कि हमारी शिक्षा नीति में एक तरह की अनिवार्यता है । लेकिन इधर के नवाचारों से ऐसा वातावरण पैदा हो सकता है कि ये जो नीति है, ये बेकार है । एक केन्द्रीकृत नीति हालात को नहीं बदल सकती, नीति-निर्माण को विद्यालय स्तर पर, विकास-खंड और जिले स्तर पर तथा शाला-प्रबंध के विभिन्न स्तरों पर विकेन्द्रित करने की आवश्यकता है । तब इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा-प्रणाली का भीमकाय ढांचा दस साल बाद ढह जाये और शिक्षा के विविध प्रयोग सामने आयें। इसके लिए जरूरी है कि लोगों को चीजों को अपनी तरह परिभाषित करने की छूट दीजिए । तब दस-बीस साल बाद विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रणालियों का एक संगठन उभर सकता है ।

मौजूदा भारत की शिक्षा नीति में स्वायत्तता नहीं है । तेजी से बदलते विश्व के साथ यह नीति चलने वाली नहीं है - डॉ. जलालुद्दीन ने चेतावनी दी । उन्होंने कहा कि हम सब शिक्षाकर्मियों को शिक्षा के केन्द्रीकरण के विरुद्ध आवाज उठाकर उसके विकेन्द्रीकरण की मांग करनी चाहिए। एक बार विकेन्द्रित होने के बाद विभिन्न शिक्षा-धाराओं को परस्पर जोड़ने वाली नीति तैयार की जा सकती है । इस सोच की शुरूआत हो चुकी है ।

शिक्षण-पद्धति और प्रशिक्षण

डॉ. जलालुद्दीन ने इस संघर्ष का हाल का एक चित्र प्रस्तुत किया । उन्होंने बताया कि हम डेढ़ सौ स्कूलों में काम कर रहे थे । इस बार शीर्ष प्रबंध ने तय किया कि यह तरीका 10 हजार नये खुलने वाले स्कूलों की पहली श्रेणी में जाना चाहिए । चूंकि यह बहुत बड़ी संख्या थी । प्रबंधकों को कहा गया कि अभी तो डेढ़ सौ स्कूलों में यह पद्धति 10 लोग मिलकर चला रहे हैं, 10 हजार में जाने के लिए तो 100 लोग चाहिये । अंत में ब्रॉक ने तय किया कि यह पद्धति जिसे 'चांदीना पद्धति' कहते हैं, इस बार एक हजार स्कूलों में लागू की जायेगी और अगली बार इसे 10 हजार स्कूलों में क्रियान्वित किया जायेगा । प्रबंधन का यह निर्णय इतना अचानक हुआ कि डॉ. जलालुद्दीन को सोचने का मौका ही नहीं मिला । उनका विचार था कि यह संक्रमण शीर्ष नियंत्रण प्रणाली को बिल्कुल अस्त-व्यस्त कर देगा, सारा तंत्र हिल जायेगा । लेकिन उन्होंने यह बताया नहीं ।

स्थापित तंत्र को यह झटका तब लगा, जब प्रशिक्षण शुरू हुआ । जब प्रशिक्षु 'चांदीना पद्धति' वाले स्कूलों में गये । वहां देखा कि पहली-दूसरी श्रेणी के बच्चे उनकी तीसरी श्रेणी के बच्चों की तरह पढ़ लिख सकते हैं; गणित कर सकते हैं । तो उनके मन में यह सवाल पैदा हुआ कि आखिर वे इतने साल से कर क्या रहे थे ।

एक प्रतीकात्मक चित्र उनके सामने रखा गया। परंपरागत प्रणाली में शिक्षक तीन घंटा पढ़ाते हैं । चांदीना पद्धति में शिक्षक पढ़ाता नहीं है, बच्चों को पढ़ने में सहयोग करता है । डेढ़ घंटे शिक्षक बच्चों से बात करता है, डेढ़ घंटे बच्चे अपने ढंग से काम करते हैं । डॉ. जलालुद्दीन शिक्षण के सारे उपक्रम को 'काम' का नाम देते हैं, चाहे वह पढ़ना-लिखना है या ड्राइंग । ये सब महत्त्वपूर्ण काम हैं जिन्हे बच्चे मनोयोग से करते हैं ।

हम इस काम में कैसे सहयोग दे सकते हैं ? इस दिशा में डॉ. जलालुद्दीन और साथियों ने पिछले दो साल से कार्य किया है । बच्चों को ऐसा काम दिया जाये जिसका परिणाम परिलक्षित हो । बेतरतीब काम का परिणाम भी बेतरतीब होगा । काम परिलक्षित होगा तो हर दिन आखिर में मूल्यांकन संभव होगा । इस तरह साप्ताहिक और मासिक मूल्यांकन से समूचे कार्यक्रम की प्रगति का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है । शिक्षकों के प्रशिक्षण में यह अहम् मुद्दा था कि वे कैसे कक्षा में काम का वातावरण पैदा कर सकते हैं ? कैसे काम को बांटेंगे और बच्चे को काम में कैसे मदद करेंगे ?

दूसरी कक्षा के उत्तरार्द्ध और तीसरी व उससे आगे बोध और अर्थ समझने की प्रक्रिया शुरू होती है । भाषा से अर्थ में कैसे आते हैं ? यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है । परंपरागत प्रशिक्षण में जब शिक्षक से पूछते हैं कि ये बंगला कहानी या कविता की किताब है अथवा यह एक सूचना–आधारित लेख है– इसे आप बच्चों को कैसे पढ़ायेंगे ? यह मान लीजिए 'मौसम' पर एक पाठ है। तो शिक्षक कहता है, इसमें लिखा है – वही पढ़ायेंगे, ज्ञान देंगे बच्चों को, और कुछ उसकी समझ में नहीं आता । और जब क्या पढ़ायेंगे, क्यों पढ़ायेंगे–यह समझ में नहीं आता तो कैसे पढ़ायेंगे, इसका तो सवाल ही नहीं उठता ।

बच्चा गलती करता है, हम इसे नकारात्मक नहीं लेते। गलती से हमें मालूम पड़ता है कि उनके सोचने के तरीके में समस्या कहां है। 15–20 मिनिट में पता चल जाता है कि बच्चों को भाषा या गणित में कहां तक आता है : कहां तक वे आत्म–विश्वास पूर्वक कर सकते हैं, कहां उन्हें थोड़ा संदेह है ? कहां वे झिझकते हैं और कहां गलतियां कर सकते हैं ।

इसलिए बच्चों के विकास के अधिकतम क्षेत्र को समझते हुए हमें निश्चयपूर्वक यह कहने में समर्थ होना चाहिए कि बच्चों को ये चीज पूरी तरह समझ में आ गई है । अब बच्चे के समस्या क्षेत्र समझने होंगे अन्यथा हम उनकी मुश्किलें नहीं सुलझा सकते। कक्षा में सिर्फ कागज–पैंसिल की पढ़ाई से यह समस्या नहीं सुलझने वाली, बच्चे नियम रट लेते हैं, नियमानुसार अभ्यास कर लेते हैं किन्तु अवधारणात्मक समझ अपरिपक्व रह जाती है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने अपना एक साल पहले का अनुभव बताते हुए कहा ; सबसे पहले शिक्षक विषय के बारे में 10 मिनिट की प्रस्थापना करेंगे । पूरी कक्षा के 30-35 बच्चों को पूरा बतायेंगे, सवाल-जबाव करेंगे, उसके बारे में बोर्ड पर लिख देंगे । फिर कहेंगे कि हमने जो कहा है, उसे हम छोटे-छोटे कामों में बांटेंगे, जैसे ये जो पाठ है, उसमें से 'क' से शुरू या 'क' से खत्म होने वाले शब्दों को चिन्हित करो और उन्हें लिखो । जैसे 'आ' ध्वनि कौन कौन से शब्द में है और उससे कौन-सी मात्रा जुड़ी है - उसकी शोध करो । इस तरह ध्वनि के प्रति सजगता भी पहली कक्षा से आरंभ हो जाती है । सब बच्चे समूह में अपनी रिर्पोट तैयार करके उसे प्रस्तुत करते हैं। इस दौरान शिक्षक घूम-घूम कर बच्चों को काम करते हुए देखते हैं ।

डॉ. जलालुद्दीन बताते हैं कि कक्षा में काम का ऐसा माहौल पैदा करने में उन्हें दो महीने लगे । अब कोई भी वहां जाकर देखता है तो पाता है कि बच्चे काम कर रहे हैं । शिक्षक घूम घूम कर बच्चों को देख रहे हैं । अथवा उनके लिए अगला काम तैयार कर रहे हैं । बच्चे आकर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहे हैं और तर्क-वितर्क कर रहे हैं । आप पायेंगे कि हर बच्चे के पास कोई काम है, वह उसे पूरा कर रहा है या उसे प्रस्तुत करने के लिए आ रहा है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि इन संगठनों द्वारा संचालित शिक्षा कार्यक्रमों में शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे लोग दसवीं उत्तीर्ण भी नहीं हैं । परंपरागत कार्यक्रम में इन्हें 15 दिन का प्रशिक्षण दिया जाता था । डॉ. जलालुद्दीन इन्हें छः दिवसीय प्रशिक्षण देते हैं । प्रशिक्षण के दौरान वे एक साथ नाचते-कूदते हैं, गाते-खेलते हैं, पढ़ते-लिखते और चित्रण करते हैं । इस प्रशिक्षण में सामान्यतः उन्हें मौखिक परम्परा के अनुभवों के प्रति संवेदनशील किया जाता है ।

उसके बाद शिक्षकों की प्रतिमाह एक दिवसीय बैठक होती है । डॉ. जलालुद्दीन बताते हैं कि इस पर उन्होंने बहुत ज्यादा ध्यान दिया है । इसमें शिक्षक गत माह में आयी समस्याओं और उनकी प्रकृति पर विचार-विमर्श करते हैं । इस दौरान संदर्भ - व्यक्ति उन्हें उपलब्ध रहते हैं लेकिन वे सिर्फ मार्ग दर्शन कराते हैं । शिक्षक सामूहिक रूप से स्वयं यह तय करते हैं कि अगले माह वे क्या करायेंगे, जो वे अभी नहीं करा पाये हैं । 30 स्कूल मिलकर अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करते हैं । बाकी 30 स्कूलें भिन्न लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं। उन्हें एक समान लक्ष्य निर्धारण की कोई बाध्यता नहीं है। वे संदर्भ व्यक्ति से शिक्षण विधियों पर सैंकडों सवाल करते हैं ।

कक्षा दो में लेखन के मसले पर शिक्षक संशोधन और गलतियों के सुधार को लेकर सवाल कर सकते हैं । वे कहते हैं, ये कैसे संभव है, बच्चे यह नहीं कर सकते, आप कैसे कह सकते हैं कि बच्चे यह कर सकेंगे ? हमने बच्चों के समूह में एक बच्चे को समूह का नेता बना रखा है । यह नेता बारी-बारी बदलता रहता है। इसे शिक्षक थोड़ा अलग से समय देकर समझाते हैं । जैसे उसे कहा जाता है कि संशोधन के तरीके में हम पहले पूर्ण-विराम और अर्ध-विराम को ही देखेंगे। फिर यह देखते हैं कि वाक्य किसको कहते हैं ? फिर इ, ई ओर उ ऊ की मात्राओं के भेद समझाये जाते हैं । इस तरह संशोधन और संपादन की पूरी प्रक्रिया को इस प्रकार सरलीकृत कर दिया गया है कि बच्चे हर सप्ताह धीरे-धीरे सीखते हुए आगे बढ़ते जाते हैं ।

इसी तरह अनुच्छेद पर आते हैं । अनुच्छेद किसको कहते हैं और इसे क्यों अनुच्छेद कहेंगे? बिना मुख्य-विचार और मुख्य-वाक्य के अनुच्छेद नहीं हो सकते हैं । जब कहानी कहते हैं तो उसमें अनुच्छेद होते हैं । यदि अनुच्छेद नहीं होते तो क्या अन्तर होता ? इस तरह हर दिन विचार विमर्श से सीखने, सीखने से पढ़ने और लिखने में उसे प्रयुक्त करने, फिर संशोधित संपादित करने की प्रक्रिया चलती रहती है ।

दूसरी कक्षा के उत्तरार्द्ध और तीसरी व उससे आगे बोध और अर्थ समझने की प्रक्रिया शुरू होती है । भाषा से अर्थ में कैसे आते हैं ? यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है । परंपरागत प्रशिक्षण में

जब शिक्षक से पूछते हैं कि ये बंगला कहानी या कविता की किताब है अथवा यह एक सूचना-आधारित लेख है-इसे आप बच्चों को कैसे पढ़ायेंगे ? यह मान लीजिए 'मौसम' पर एक पाठ है। तो शिक्षक कहता है, इसमें लिखा है - वही पढ़ायेंगे, ज्ञान देंगे बच्चों को, और कुछ उसकी समझ में नहीं आता । और जब क्या पढ़ायेंगे, क्यों पढ़ायेंगे-यह समझ में नहीं आता तो कैसे पढ़ायेंगे, इसका तो सवाल ही नहीं उठता ।

डॉ. जलालुद्दीन अपने शिक्षकों से कहते हैं - आइये देखिए तीन घंटे वे बच्चों को पढ़ाते हैं और प्रशिक्षु शिक्षक यह देखते हैं । इसकी वीडियों रिकार्डिंग की जाती है । शिक्षकों से विचार-विमर्श करते हैं कि हमने क्या किया, क्यों किया और फिर उसका विश्लेषण करते हैं ।

दूसरे तरीके में, जब किसी मुद्दे पर प्रशिक्षु यह प्रतिवाद करते हैं कि ये नहीं हो सकता । हम 15 बच्चों को गांव से ले आते हैं । उन बच्चों के साथ पूरे आत्मविश्वास से बीस तरह की चीजें करवाई जाती हैं । ये सब बहुत व्यवस्थित और पूर्व-नियोजित ढ़ंग से कराते हैं लेकिन किसी को इसका आभास नहीं होने देते । यह सब सहजता से होता दिखता है लेकिन इसके पीछे एक योजना होती है । बच्चे जबाव देने में, सोचने में जो वक्त लगा रहे हैं, उनका सोचने का जो तरीका है, उससे हम समझ जाते हैं कि उनकी तकनीक क्या है । बच्चा तुरत-फुरत जबाव दे, इसमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है । बच्चा इस अवसर पर कैसे प्रतिक्रिया करता है, मेरे लिये ये महत्वपूर्ण है - डॉ. जलालुद्दीन कहते हैं । बच्चा गलती करता है, हम इसे नकारात्मक नहीं लेते । गलती से हमें मालूम पड़ता है कि उनके सोचने के तरीके में समस्या कहां है ? 15-20 मिनिट में पता चल जाता है कि बच्चों को भाषा या गणित में कहां तक आता है ? कहां तक वे आत्म-विश्वास पूर्वक कर सकते हैं, कहां उन्हें थोड़ा संदेह है ? कहां वे झिझकते हैं और कहां गलतियां कर सकते हैं ?

डॉ. जलालुद्दीन ने बताया कि वे कक्षा में, देहाती बच्चों के साथ शैक्षिक मनोविज्ञान के अधुनातन सिद्धांतों और सामाजिक संरचनावाद पर काम कर रहे हैं । गणित शिक्षण की समस्या का डॉ. जलालुद्दीन ने एक और उदाहरण दिया । 'दिल्ली म्युन्सिपल स्कूलों के प्राथमिक स्तर में गणित शिक्षण' एन.आई.आई.टी. की एक परियोजना के अन्तर्गत डॉ. जलालुद्दीन ने दिल्ली के कुछ स्कूलों में काम किया । इसमें भिन्न और दशमलव पर काम करते हुए जब बच्चों से 3905.5 रु. में कितने रुपये और कितने पैसे हैं ? यह पूछा तो 90 प्रतिशत बच्चों ने 5 पैसे बताये जबकि यह 50 पैसा है । तो 50 और 5 एक ही बात है, यह अवधारणा पांचवी कक्षा तक स्पष्ट नहीं होती। डॉ. जलाल के अनुसार ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं, जब अवधारणात्मक समस्याएं रह जाती हैं ।

इसलिए बच्चों के विकास के अधिकतम क्षेत्र को समझते हुए हमें निश्चयपूर्वक यह कहने में समर्थ होना चाहिए कि बच्चों को ये चीज पूरी तरह समझ में आ गई है । अब बच्चे के समस्या क्षेत्र समझने होंगे अन्यथा हम उनकी मुश्किलें नहीं सुलझा सकते । कक्षा में सिर्फ कागज-पैंसिल की पढ़ाई से यह समस्या नहीं सुलझने वाली, बच्चे नियम रट लेते हैं, नियमानुसार अभ्यास कर लेते हैं किन्तु अवधारणात्मक समझ अपरिपक्व रह जाती है । डॉ. जलालुद्दीन एक और उदाहरण देते हैं : पहले दर्जे में गिनती आनी चाहिए । 20 मनकों वाली एक माला में बच्चे से गिनती करने को कहा जाये तो वह एक-दो करके गिनना शुरू करेगा, फिर भूल जायेगा । फिर एक जगह एक हाथ की अंगुली रखकर गिनती शुरू करेगा, यह जो अंगुली रखी है - ये संदर्भ-बिन्दु है । जो गिनती का पहला सबक है । अब बच्चे से कहा जाये कि अगर उधर से गिनें तो कितना होगा, सोचकर जरा बिना गिने बताओ । तो बच्चा अचकचाकर कहेगा, मालूम नहीं । इसलिए गणित में प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक अनुसंधान की विपुल संभावनाएं हैं और विश्व में अनेक जगह गणित की बुनियादी अवधारणाओं की शिक्षण-विधि पर अनुसंधान कार्य हो रहे हैं ।

इसी तरह भाषा में संरचना की अवधारणा है । कहानी में एक संरचना होती है – यह हम मानते हैं । कहानी की एक अभिकल्पना होती है जो रोचकता को बनाये रखती है । हमने यह प्रयोग किया कि हरेक स्कूल में कहानी सुनायेंगे। लेकिन कहानी सुनाने के बाद चर्चा भी की जाती है।

चर्चा के बिन्दु इस प्रकार हो सकते हैं, जैसे कहानी के मुख्य पात्र कौन हैं? कहानी की मूल समस्या क्या है ? इस समस्या का हल कैसे हुआ ? जब इन बिन्दुओं पर चर्चा होती है तो संरचना समझ में आने लगती है । बच्चे समझने लगते हैं कि राजकुमार ही नहीं, चूहा एवं बिल्ली भी चरित्र हो सकते हैं । तो चरित्र की अवधारणाएं स्पष्ट हो गई । इसी तरह समस्या और उसके समाधान का मसला है । बच्चे समझ जाते हैं कि कोई एक मूल समस्या है और बाकी समस्याएं उसी से उभरी हैं , तो मूल समस्या को पकड़ो । फिर समस्या का हल कैसे हुआ? यह सब क्या है ? तो बच्चे अमूर्त चिन्तन की ओर अग्रसर होते हैं ।

इसी तरह भाषा में संरचना की अवधारणा है । कहानी में एक संरचना होती है - यह हम मानते हैं । कहानी की एक अभिकल्पना होती है जो रोचकता को बनाये रखती है । हमने यह प्रयोग किया कि हरेक स्कूल में कहानी सुनायेंगे । लेकिन कहानी सुनाने के बाद चर्चा भी की जाती है । शुरू में बिल्कुल बेतरतीब चर्चा होती थी - एक राजा था, ये था, वो था । हमने कहा, इस तरह की चर्चा की जरूरत नहीं है चर्चा के बिन्दु इस प्रकार हो सकते हैं, जैसे कहानी के मुख्य पात्र कौन हैं? कहानी की मूल समस्या क्या है ? इस समस्या का हल कैसे हुआ ? जब इन बिन्दुओं पर चर्चा होती है तो संरचना समझ में आने लगती है । बच्चे समझने लगते हैं कि राजकुमार ही नहीं, चूहा एवं बिल्ली भी चरित्र हो सकते हैं । तो चरित्र की अवधारणाएं स्पष्ट हो गई । इसी तरह समस्या और उसके समाधान का मसला है । बच्चे समझ जाते हैं कि कोई एक मूल समस्या है और बाकी समस्याएं उसी से उभरी हैं , तो मूल समस्या को पकड़ो । फिर समस्या का हल कैसे हुआ ? यह सब क्या है ? तो बच्चे अमूर्त चिन्तन की ओर अग्रसर होते हैं ।

कहानी सुनाने–समझने को हमने श्रेणीबद्ध कर लिया है क्योंकि विभिन्न स्तरों पर कहानी को भिन्न तरह समझ और बोध के स्तरानुसार प्रस्तुत करना होता है । हर स्तर पर बोध का स्तर भिन्न होता है। बंगला देश में अलग–अलग बोलिया हैं । कई जगह तो एक जिले की बोली दूसरे जिले में समझ नहीं आती है । बोली (मातृभाषा) और मानक भाषा के बीच द्वन्द्व है जो हमारे सामने बहुत बड़ा सवाल है ।

कहानी सुनाने-समझने को हमने श्रेणीबद्ध कर लिया है क्योंकि विभिन्न स्तरों पर कहानी को भिन्न तरह समझ और बोध के स्तरानुसार प्रस्तुत करना होता है । हर स्तर पर बोध का स्तर भिन्न होता है ।

बच्चे को मातृभाषा से मानक भाषा की ओर कैसे लाते हैं, इस सवाल पर बोलते हुए डा. जलालुद्दीन ने बताया कि बंगला देश में अलग-अलग बोलियां हैं । कई जगह तो एक जिले की बोली दूसरे जिले में समझ नहीं आती है । बोली (मातृभाषा) और मानक भाषा के बीच द्वन्द्व है जो हमारे सामने बहुत बड़ा सवाल है, जैसे नोआखाली जिले की बोली में क को ख कहते हैं, ख को क, इसी तरह ब को भ कहते हैं भ को ब । जब हमने उनको लिखना सिखाया तो सृजनशील लेख में वे उल्टा लिखते हैं । हमने ये निर्णय लिया कि ध्वनि चेतना के विकास की प्रक्रिया यहीं से शुरू करते हैं । वे जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं । शिक्षक को हमने कहा शुरू के छह महीने कुछ मत कहिए । फिर पढ़ते हैं तो ठीक पढ़ते हैं लेकिन लिखते वक्त वही लिखने हैं जैसे बोलते हैं, जैसे - 'भात खाया' के लिए 'बात खाया' । इस स्थिति में बहुत से शब्दों के दो रूप होंगे - एक बोली का और दूसरा मानक भाषा का और एक अनुवाद की प्रक्रिया चलानी होगी ।

कक्षा में चर्चा के दौरान शिक्षक जानबूझकर मानक भाषा में सही उच्चारण सहित बातचीत को प्रोत्साहित करता है । बेशक बच्चे गलती करते हैं। लेकिन इस पर शिक्षक बच्चों को डांटते नहीं हैं, एक वातावरण रखते हैं शुद्ध भाषा का । बच्चे दो भाषा रूप में चलते रहते हैं और जब वे शब्द का सही उच्चारण सीख जाते हैं, उसे सही तरह लिखना सीख जाते हैं तो यह द्वन्द्व समाप्त हो जाता है ।

जब लेख का संपादन शुरू होता है, उसके लिए हमने निर्णय लिया है कि लेख पर जो भी चर्चा होगी, शुद्ध भाषा में होगी । 'कुत्ता' का मानक बंगला में 'कुकुर', 'कउवा' का बंगला मानक है 'काक' । कहानी कहेंगे तो 'कुकुर' या 'काक' कहेंगे । कक्षा में चर्चा के दौरान शिक्षक जानबूझकर मानक भाषा में सही उच्चारण सहित बातचीत को प्रोत्साहित करता है । बेशक बच्चे गलती करते हैं । लेकिन इस पर शिक्षक बच्चों को डांटते नहीं हैं, एक वातावरण रखते हैं शुद्ध भाषा का । बच्चे दो भाषा रूप में चलते रहते हैं और जब वे शब्द का सही उच्चारण सीख जाते हैं, उसे सही तरह लिखना सीख जाते हैं तो यह द्वन्द्व समाप्त हो जाता है ।

दूसरा सवाल है, हम बच्चों के बचपन की रक्षा कैसे करें ? डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि हर स्कूल या केन्द्र का अपना अनुशासन और विधान होता है । लेकिन हमने एक ठोस परिवर्तन किया है कि कोई काम करने से पहले बच्चे से चर्चा करें । बच्चों की बात सुनी जाती है । कोई कालांश आगे पीछे करना है - यह हमने शिक्षक और बच्चों पर छोड़ दिया । शिक्षक को कहा गया कि बच्चों की निर्णय-प्रक्रिया में, बदलाव में भागीदारी बनाइये ।

बच्चों को सीखने के दौरान जो समूह-कार्य दिया जाता है, उसमें उनको अपनी गति से आगे बढ़ने की स्वतंत्रता होती है । खेल और खेल का समय भी बच्चे खुद तय करते हैं - इस तरह स्कूल चलाने की निर्देशित पद्धति को कुछ परिवर्तित करने की हमने कोशिश की है । इससे ज्यादा इस समय करना शायद मुश्किल है ।

आखिर में डॉ. जलालुद्दीन कहते हैं कि जब बच्चे खुद सीखने की जिम्मेदारी लेते हैं तो सीखने की प्रक्रिया का नियंत्रण काफी हद तक बच्चों के खेमे में चला जाता है । ये बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे खुद तय करते हैं कि हम अलग-अलग दल में क्या सीखेंगे, इस सप्ताह क्या-क्या करेंगे। यह तय करने को जब छोटे समूह को कहा जाता है तो उसमें जिम्मेदारी की भावना आ जाती है। इसमें शिक्षक भी बहुत राहत अनुभव करते हैं । ऐसा पहले भी हुआ है और जब सीखने की जिम्मेदारी बच्चों को दी गई, इन्हें जवाबदेह रखा गया तो वे तेजी से आगे बढ़ना चाहते हैं । वे अपने सामने एक चुनौती देखते हैं और उपलब्धि अर्जित करना चाहते हैं ।

इन सब तरीकों पर हमने कोशिश की है लेकिन पूरी तरह कामयाब ही हुए हैं, ये मैं नहीं कहूंगा।

लेकिन जब चांदीना पद्धति में बच्चों और शिक्षक को यह स्वतंत्रता और स्वायत्तता दी गयी तो सब जगह यह बात फैल गयी कि इससे तो अनुशासनहीनता और अराजकता हो जायेगी । मगर जब उपलब्धि स्तर देखा गया तो यहां के बच्चे सबसे आगे थे । प्रारंभ में, प्रबंधक शिक्षक और पर्यवेक्षक को छूट और विकल्प देने के पक्ष में नहीं थे । लेकिन इस प्रयोग की सफलता के बाद वे बच्चों को स्वतंत्रता देने, शिक्षक और पर्यवेक्षकों को जिम्मेदारी और जबावदेही के साथ निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित करने के पक्षधर हो गये । उन्होंने देखा कि इससे गुणात्मक परिवर्तन आता है। मुझे पूरा भरोसा है कि समूचे तंत्र में रूपान्तरण की यह एक धीमी किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ।

गति की स्वतंत्रता

बच्चे के सीखने की गति की स्वतंत्रता पर उठे सवालों का जवाब देते हुए डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि सीखने की गति पहले तो सभी बच्चों की करीब-करीब बराबर होती है, क्योंकि यहां ज्यादातर तो 'करके सीखना' होता है । जब किताब में पाठों पर जाते हैं तो बच्चे थोड़ा बंट जाते हैं । उसमें समूह के बच्चे थोड़ा आगे पीछे हो सकते हैं । कोई चीज चार बच्चों ने सीख ली, दो बच्चों ने नहीं सीखी । इसके लिए शिक्षक की जिम्मेदारी होती है कि समूह में जो बच्चे पीछे हैं उनकी अलग से मदद करें । बच्चे तो खुद पढ़ रहे हैं तो जो बच्चा पीछे रह गया, उसे शिक्षक सहयोग करे ।

पहली कक्षा के बच्चों की सीखने में भिन्नता कैसे होती है, जैसे पढ़ने में 15 को पढ़ना है, दो शब्दों का उच्चारण नहीं आया। एक बच्चा एक शब्द नहीं पढ़ सका । किसी बच्चे ने सभी 15 शब्द पढ़ लिये । ये अंतर होता है । इसको डॉ. जलालुद्दीन गति का अंतर नहीं कहते । वे कहते हैं कि इन बच्चों को थोड़ा समय चाहिए, अभी नहीं पहचानते, बाद में पहचान लेंगे । इसमें थोड़ा सा 19-20 हो सकता है मगर 10-20 नहीं होगा ।

इसमें गति की स्वतंत्रता बहुत अहम् मसला नहीं है । जो बच्चे थोड़े पीछे रह जाते हैं, वे संख्या में बहुत ज्यादा नहीं होते । इसलिए ऐसे बच्चों की थोड़ी मदद करने से उनकी गति बढ़ जाती है ।

शिक्षा का प्रगतिशील आन्दोलन, वैयक्तिक शिक्षण और गति की स्वतंत्रता जैसे विचार इंग्लैंड से आये । अब इंग्लैंड में ही इन पर पुनर्विचार हो रहा है । अब यह एक तरह का लाइसेंस हो गया है कि बच्चा जिस ढंग से आगे बढ़ रहा है, उसे बढ़ने दो । जिस बच्चे को हम जो थोड़ी मदद कर सकते हैं, दिशा दे सकते हैं, वह भी नहीं देते । कहते हैं उनको अपने तरीके से सीखने दो । तो ये जो लाइसेंस है, इसे बंद करने की कोशिश कर रहे हैं ।

जो बच्चे पीछे रह जाते हैं, उन्हें अगर 10 मिनिट ज्यादा दिये जायें तो वे आगे बढ़ जाते हैं । जिनको थोड़ी मुश्किल होती है भाषा समझने में, सोचने में - उनको मदद की जा सकती

स्कूल या केन्द्र का अपना अनुशासन और विधान होता है । लेकिन हमने एक ठोस परिवर्तन किया है कि कोई काम करने से पहले बच्चे से चर्चा करें । बच्चों की बात सुनी जाती है । कोई कालांश आगे पीछे करना है – यह हमने शिक्षक और बच्चों पर छोड़ दिया । शिक्षक को कहा गया कि बच्चों की निर्णय–प्रक्रिया में, बदलाव में भागीदारी बनाइये ।

जब बच्चे खुद सीखने की जिम्मेदारी लेते हैं तो सीखने की प्रक्रिया का नियंत्रण काफी हद तक बच्चों के खेमे में चला जाता है । ये बहुत महत्त्वपूर्ण है कि बच्चे खुद तय करते हैं कि हम अलग–अलग दल में क्या सीखेंगे, इस सप्ताह क्या–क्या करेंगे। जब सीखने की जिम्मेदारी बच्चों को दी गई, इन्हें जवाबदेह रखा गया तो वे तेजी से आगे बढ़ना चाहते हैं । वे अपने सामने एक चुनौती देखते हैं और उपलब्धि अर्जित करना चाहते हैं ।

है । लेकिन ऐसी तो कोई गुंजाइश नहीं है कि और बच्चे तो एक साल आगे रहें और कुछ बच्चे पीछे रह जायें ।

कुछ बच्चों को जरूर कुछ खास तरह की मुश्किल होती है, लेकिन उसके लिए तो आपको अलग से शोध करना पड़ेगा । ऐसे बच्चों को भी यू हीं पीछे छोड़ देना उचित नहीं है । यह खोजना पड़ेगा कि उस बच्चे के साथ क्या मुश्किल है और क्यों है ?

सीखने की गति में भिन्नता यह एक सीमित दायरे में ही पायी जाती है । एक स्तर का अंतर हो सकता है लेकिन कोई बड़ा अंतर नहीं हो सकता । और यदि कोई बड़ा अंतर दिखे तो उसे गंभीरता से लेना होगा । उन्हें एक ही समूह में रखेंगे तो शिक्षक सबको लेकर आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए समूह-संरचना में इस पर ध्यान देना चाहिए ।

शिक्षा का प्रगतिशील आन्दोलन, वैयक्तिक शिक्षण और गति की स्वतंत्रता जैसे विचार इंग्लैंड़ से आये । अब इंग्लैंड में ही इन पर पुनर्विचार हो रहा है । अब यह एक तरह का लाइसेंस हो गया है कि बच्चा जिस ढ़ंग से आगे बढ़ रहा है, उसे बढ़ने दो । जिस बच्चे को हम जो थोड़ी मदद कर सकते हैं, दिशा दे सकते हैं, वह भी नहीं देते । कहते हैं उनको अपने तरीके से सीखने दो। तो ये जो लाइसेंस है, इसे बंद करने की कोशिश कर रहे हैं ।

डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि जो जैसा चाहे पढ़ने दो, मैं इसके पक्ष में नहीं हूं । मैं मानता हूं कि बच्चे में सीखने की बहुत क्षमता है और ऐसी पद्धति हो सकती है जिससे वे बहुत अधिक सीख सकते हैं ।

इस प्रकार की विधि में मेटालर्निंग एवं मेटा-कॉग्निशन के तत्व होंगे । बच्चों का यह सोचना कि हम क्या कर रहे हैं ? कैसे कर रहे हैं ? इसे किसी दूसरे ढंग से भी कर सकते हैं क्या? आदि मेटालर्निंग के दायरे में आयेगा । इस से बच्चे सोच विचार कर सीखने लगेंगे । बच्चों में इस प्रकार से सोच-विचार कर सीखने की क्षमतायें विकसित करना और आदत बनाना यह शिक्षण विधि का सवाल है और यह किया जाना संभव है ।

बच्चों को सीखने की गति की स्वतंत्रता का सिद्धांत पियाजे के मनोविज्ञान पर आधारित है। इस में यह माना जाता है कि हर व्यक्ति अपने अनुभवों की व्याख्या करते हुए अपने ज्ञान का निर्माण करता है । इसे सीखने का कन्स्ट्रक्टिविस्ट सिद्धांत कहते हैं । विगॉत्सकी ने अनुभवों की व्याख्या में सामाजिक अंत:क्रिया के महत्व पर बल दिया और कहा कि ज्ञान का निर्माण अनुभव की व्याख्या से होता है पर यह व्याख्या व्यक्ति अकेला नहीं करता बल्कि सामाजिक अंत:क्रिया में, दूसरों से संवाद एवं सहयोग के वातावरण में करता है । इसे सोशियल कन्सट्रक्टिविस्ट सिद्धांत कहा जाता है ।

कुछ बच्चों को जरूर कुछ खास तरह की मुश्किल होती है, लेकिन उसके लिए तो आपको अलग से शोध करना पड़ेगा । ऐसे बच्चों को भी यू हीं पीछे छोड़ देना उचित नहीं है । यह खोजना पड़ेगा कि उस बच्चे के साथ क्या मुश्किल है और क्यों है ?

शिक्षक बाल-समूह में सोशियल कन्स्ट्रक्टिविष्ट सिद्धांत के आधार पर मेटा-लर्निंग की प्रक्रियाएं आरंभ कर सकता है । यह करने के विभिन्न तरीके हो सकते हैं । एक तरीका विगॉत्सकी ने जिसे 'जोन आफ प्रोक्सिमल डवलपमेंट' कहा है वह हो सकता है । जोन आफ प्रोक्सिमल डवलपमेंट का अर्थ है समस्या समाधान में बच्चे के वास्तविक विकास एवं अपने से अधिक समर्थ साथियों के सहयोग से समस्या समाधान में संभावित स्तर में अंतर । यह बच्चे की समझ का वह सीमांत क्षेत्र है जहां वह अपनी अर्जित समझ को अन्य साथियों की मदद से आगे विस्तार देता है।

इसे हम जो हर बच्चे का अधिकतम अधिगम स्तर है, वहां तक ले जा सकते हैं । इससे हम ये समझ सकते हैं कि बच्चे को समस्या कहां हुई, क्यों हुई, उसे रिकार्ड कर सकते हैं, जैसे मैं ने बताया बहुत बच्चे 0.5 पर अटक जाते हैं, इसको 5 पैसा कहते हैं । जब अवधारणा की समस्या है तो आप गति की स्वतंत्रता देकर क्या करेंगे ? बल्कि तब तो ये और भी गलत है जबकि 90 प्रतिशत बच्चे अवधारणा नहीं समझे हैं । इस तरह तो गति की स्वतंत्रता गलती करते रहने की स्वतंत्रता हो जाती है ।

तो ये जो लाइसेंस है, बाल केन्द्रित शिक्षा के नाम छूट देकर, आपने जो बच्चों को नकार रखा है, जिसमें स्वयं शिक्षक के निहित स्वार्थ पैदा हो जाते हैं, हम इसके पक्ष में नहीं हैं ।

मूल्यांकन

डॉ. जलालुद्दीन ने बताया कि शिक्षण उपलब्धियों का मूल्यांकन भी बच्चे खुद करते हैं । बच्चों की हिस्सेदारी से मूल्यांकन भी साथ-साथ चलता रहता है । बच्चों को जो पढ़ाया, उनसे कहा कि तुम अपने लिए 10 में से कितने अंक देना चाहोगे । किसी बच्चे ने कहा - छह, किसी ने कहा - तीन, क्योंकि मेरा अच्छा नहीं हुआ। बच्चे खुद कह देते हैं कि हम 10 बच्चों में से 5 की अच्छी उपलब्धि है ।

इस तरह बच्चों अपने मूल्यांकन के प्रति खुद जबावदेह होते हैं । हम उन पर कुछ आरोपित नहीं करते, वे खुद अपना आकलन करते हैं । अभी तक ये सब अनौपचारिक रूप से चल रहा था, डॉ. जलालुद्दीन बताते हैं लेकिन अब यह कार्यक्रम चूंकि हजार स्कूलों में प्रसारित होगा, इसलिए इसका कुछ सूत्रीकरण करना होगा । इसकी लिखित निर्देशिका तो बनायेंगे लेकिन यह तय किया गया है कि उसे ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जायेगा । इस निर्देशिका को अधिक से अधिक 50 प्रतिशत अहमियत देंगे ।

प्रशिक्षण का यही तरीका रहेगा कि नया (प्रशिक्षु) शिक्षक पुराने शिक्षक के शिक्षण का अवलोकन करें । शिक्षण की परंपरागत शैली से नयी पद्धति का अंतर दिखता रहेगा । प्रदर्शन-पाठ श्रेष्ठ प्रशिक्षण तकनीक है । और यह कि पढ़ना-लिखना इस तरह हो कि यह निरंतर परिलक्षित होता रहे ।

भाषा-शिक्षण

भाषा को डॉ. जलालुद्दीन बहुत व्यापक अर्थ में लेते हैं । उनके लिए भाषा में संख्याओं सहित सारे प्रतीक/संकेत चिन्ह शामिल हैं । भाषा-शिक्षण का मतलब भाषा-कौशल का विकास तो है ही, लेकिन यह एक व्यापक प्रक्रिया है । यह बच्चे का समृद्ध मौखिक संस्कृति से लिखित संस्कृति में संक्रमण है । यह संक्रमण बहुत कठिन है और यदि यह प्राथमिक स्तर पर ठीक से सम्पन्न नहीं होता तो बच्चा आगे जाकर भाषा के क्षेत्र में असफल हो जाता है ।

भाषा-शिक्षण को सामान्यत: 'पढ़ने' पर केन्द्रित किया जाता है लेकिन यह इससे कहीं अधिक है। यह सांस्कृतिक परंपरा में, लिखित संस्कृति की दुनिया में प्रविष्ट होना है । इस संक्रमण में 'लेखन' की अहम् भूमिका है क्योंकि लेखन सोच की प्रक्रिया और सोच की मांग उत्पन्न करता है जबकि पढ़ना दूसरे के सोच पर निर्भर करता है । इसलिए परंपरागत ढंग से पहली-दूसरी कक्षाओं में पढ़ने पर जोर दिया जाता है । जबकि डॉ. जलालुद्दीन लिखने पर जोर देते हैं । उनका मानना है कि अगर पढ़ने के साथ लिखने को नहीं जोड़ेंगे तो चिंतन मनन का विकास नहीं होगा ।

सृजनात्मक पठन तब तक संभव नहीं है जब तक कि बच्चा स्वतंत्र सृजनात्मक तरीके से सोचना और लिखना शुरू नहीं करता है । लेखन के लिए बच्चे को तैयार करने के लिए उसे मौखिक संप्रेषण में सक्षम बनाना होगा । बच्चा अपने भाव और सोच को जब तक ठीक से मुखरित नहीं कर पायेगा, तब तक सुगठित रूप से लिखने के लिए तैयार नहीं हो सकता । इसलिए बच्चे अपने विचार को व्यवस्थित रूप से मौखिक संप्रेषण में व्यक्त कर सके, उन्हें लेखन से जोड़ते हैं और उनके पढ़ने को समृद्ध करते हैं ।

बच्चे पहली कक्षा में ही तीसरे-चौथे महीने से लिखना शुरू करते हैं और छठे माह के अंत तक पृष्ठ लिखना सीख जाते हैं । बच्चे के हिज्जों (स्पैलिंग) की गलतियों पर ज्यादा ध्यान नहीं देते क्योंकि बच्चे उनकी खोज करते हैं । जब बच्चों को स्वर-तंत्र (फॉनोलॉजी/फॉनेटिक्स) मालूम है तो उन्हें हिज्जों को खोजने देना चाहिये । यदि वे गलती करेंगे तो वह आगे ठीक हो जायेगी। इस समय भाषा में प्रवाह को प्रोत्साहित किया जाता है ।

इस प्रकार की विधि में मेटालर्निंग एवं मेटा-कॉग्निशन के तत्व होंगे । बच्चों का यह सोचना कि हम क्या कर रहे हैं ? कैसे कर रहे हैं ? इसे किसी दूसरे ढंग से भी कर सकते हैं क्या? आदि मेटालर्निंग के दायरे में आयेगा । इस से बच्चे सोच विचार कर सीखने लगेंगे । बच्चों में इस प्रकार से सोच-विचार कर सीखने की क्षमतायें विकसित करना और आदत बनाना यह शिक्षण विधि का सवाल है और यह किया जाना संभव है।

बच्चों को सीखने की गति की स्वतंत्रता का सिद्धांत पियाजे के मनोविज्ञान पर आधारित है। इस में यह माना जाता है कि हर व्यक्ति अपने अनुभवों की व्याख्या करते हुए अपने ज्ञान का निर्माण करता है। इसे सीखने का कन्स्ट्रक्टि-विस्ट सिद्धांत कहते हैं । विगॉत्सकी ने अनुभवों की व्याख्या में सामाजिक अंत:क्रिया के महत्व पर बल दिया और कहा कि ज्ञान का निर्माण अनुभव की व्याख्या से होता है पर यह व्याख्या व्यक्ति अकेला नहीं करता बल्कि सामा- जिक अंत:क्रिया में, दूसरों से संवाद एवं सहयोग के वातावरण में करता है। इसे सोसियल कन्सट्क्टि-विस्ट सिद्धांत कहा जाता है ।

छह महीने बाद जब बच्चों का लिखने का प्रवाह ठीक-ठाक हो जाता है तो उन्हें समूह कार्य दिया जाता है । इसमें एक का लिखा हुआ दूसरा पढ़ता है और उस पर टिप्पणी करता है । नवें महीने के बाद प्रत्येक पहले दिन लिखता है, दूसरे दिन उसे संशोधित और संपादित करता है और तीसरे दिन संपादित रूप में लिखता है इस तरह बच्चों के न केवल लिखने के कौशल का विकास होता है बल्कि वे लिखे हुए को संशोधित और संपादित करना भी सीखते हैं ।

शुरू में उन्हें लिखने के लिए कुछ मुद्दा नहीं दिया जाता । कह दिया जाता है कि मन आये, उस पर लिखो । दूसरी कक्षा तक आते आते यह विचार होता है कि लिखने का कोई मकसद तो होना चाहिए । दूसरी कक्षा में उद्देश्यपरक लेखन के मूल में यह होता है कि लेखन को कैसे संगठित करें ? वाक्यों को परस्पर कैसे जोड़ें ? इसके लिए भाषा की उच्च-स्तरीय समझ चाहिए । यह केवल भाषण से नहीं हो सकता ।

शिक्षक बाल–समूह में सोसिययल कन्स्ट्क्टिविष्ट सिद्धांत के आधार पर मेटा–लर्निंग की प्रक्रियाएं आरंभ कर सकता है । यह करने में विभिन्न तरीके हो सकते हैं । एक तरीका विगॉत्सकी ने जिसे 'जोन आफ प्रोक्षिमक डवलपमेंट' कहा है वह सकता है । जोन आफ प्रोक्षिमल डवलेपमेंट का अर्थ है समस्या समाधान में बच्चे के वास्तविक विकास एवं अपने से अधिक समर्थ साथियों के सहयोग से समस्या समाधान में संभावित स्तर में अंतर । यह बच्चे की समझ का वह सीमांत क्षेत्र है जहां वह अपनी अर्जित समझ को अन्य साथियों की मदद से आगे विस्तार देता है ।

डा. जलालुद्दीन ने एक उदाहरण देकर बताया, जैसे ये ब्लैक बोर्ड है । बच्चों को कहा गया कि इस पर पांच वाक्य कहें । तो इन वाक्यों का ढंग कैसा होगा 'काले रंग का ... चौकोर... फिर इतना बड़ा है, लंबा-चौड़ा है, इस पर शिक्षक लिखते हैं' हमने बच्चों को कहा कि ये तो आपने इसका वर्णन किया, यदि इस पर तुम लिखो तो क्या लिखना चाहोगे । ब्लैक बोर्ड का जो उद्देश्य है उस पर आप कुछ सोच सकते हैं ।

बच्चों ने सोचना शुरू किया। बच्चों के लिए ब्लैक बोर्ड अब एक सतही वस्तु न होकर उन्हें सोचने में समर्थ बनाने वाले संदर्भ में बदल गया । बच्चा सोचने में समर्थ होता है । वह बाहर की चीजों को भीतर के चिंतन से जोड़ सकता है । भाषा सोच को प्रतीक में ढालने की प्रक्रिया है, यह प्रतीक एक शब्द, चित्र, लय और कोई आंगिक भंगिमा अथवा गणित का अंक हो सकता है - जो चिंतन को अभिव्यक्त करता है । हमने ऐसे तीन-चार उदाहरण लिये कि चिंतन के साथ बाह्य-वस्तु को कैसे संबद्ध करें ।

इस तरह के कुछ अभ्यासों के बाद वस्तु के सतही, उपयोगितावादी हिस्से को अलग करके उसे सोच से जोड़ा जा सकता है । वस्तु के परोक्ष और दूरस्थ संदर्भ सामने आते हैं । यह बोध के लिए आवश्यक है । यह प्रक्रिया पहली-दूसरी कक्षा से आरंभ होती है जो दूसरी-तीसरी में सृजनात्मक और उद्देश्यपरक लेखन में बोध की तकनीक के रूप में अपनायी जाती है । तीसरी-चौथी में यह प्रक्रिया और तीव्र हो जाती है जिसमें चिंतन के मानचित्रण की तकनीकें प्रयुक्त की जाती हैं। बच्चे अब सिर्फ घटनाओं और विचारों का ही आदान-प्रदान नहीं करते, वे कुछ अमूर्त संबंधों को भी समझने लगते हैं । इस तरह की संज्ञानात्मक क्षमता का विकास किया जाता है । डॉ. जलालुद्दीन का कहना है कि बंगला देश के जिन गांवों में ये स्कूल हैं, वहां इन पढ़ने वाले बच्चों की पीढ़ी ही पहली शिक्षित पीढ़ी होगी । ये सभी भूमिहीन गरीब मजदूरों के बच्चे हैं । लेकिन ये बच्चे जिस तरह आपस में बोलते, लिखते और विचार करते हैं, वह देश के अन्य सुविधा सम्पन्न बच्चों की तुलना में कहीं पीछे नहीं है बल्कि आगे हो सकता है ।

एक सवाल के जबाव में डॉ. जलालुद्दीन ने बताया कि वर्णमाला की जो सौ साल पुरानी विद्यासागरीय पद्धति है, उसको हमने अपनाया है ।

इनकी जो स्वर-व्यंजन पद्धति है, उसको वर्ग कहते हैं और उनके अलग अलग नाम हैं । 'क ख ग घ ड.'; च छ ज झ ञ' इनके उच्चारण की अपनी ही आलंकारिकता है, संगीत है, इनके साथ छंद जुड़ा है । तो छंद, छवि, प्रतीक और ध्वनि इन चारों को मिलाकर जो एक भाषा का वातावरण पैदा होता है, उसको हमने छोड़ दिया ।

हमने कहा कि शब्द पढ़ो, शब्द के साथ वाक्य पढ़ना चाहिए क्योंकि तुमको बहुत ज्ञान देना

है । डॉ. जलालुद्दीन कहते हैं - पारंपरिक वर्णमाला में जो कविता है, हमने बच्चों को नाचते-गाते 15 दिन में सारी वर्णमाला सिखा दी । वे स्वर को व्यंजन से मिला सकते हैं और उसे अलग कर सकते हैं । दो महीने बाद कोई भी छोटा शब्द पढ़ सकते हैं जबकि पुराने ढर्रे में वे कोई 50 शब्द ही पढ़ सकते हैं । हालांकि वे भूल करते हैं फिर भी शब्दावली को उलटते-पुलटते हैं । 'देखो और बोलो' पद्धति में बच्चे जहां मात्र 50 शब्द ही पढ़ सकते थे, अब वे दो हजार शब्द पढ़ सकते हैं।

एक क्रियापद से रूपान्तरित 30 या 40 शब्द हो सकते हैं । यदि हमने 100 क्रियापद सिखा दिये तो बच्चों को हजारों शब्द आ जायेंगे । मौखिक रूप में, बोलचाल में भी हम शब्द को बदलते हैं । उसे रूपान्तरित करते हैं, उसकी तकनीक हमने बता दी तो फिर उसे लिख सकते हैं।

जबकि 'देखो और बोलो' पद्धति, या पूर्ण-भाषा पद्धति या साक्षरता वाली पद्धति, जो हमने पाश्चात्य प्रभाव में अपनायी हैं, उनमें बच्चा छह महीने में स्वतंत्र रूप से पढ़ना नहीं सीख सकता। डॉ. जलालुद्दीन के अनुसार, उनके यहां बच्चों ने छह माह में पहले दर्जे की किताब खत्म की और अगले तीन माह में दूसरे दर्जे की चार कहानियों की किताबें पढ़ लीं । जबकि पुरानी पद्धति में इस दौरान वे सिर्फ एक किताब ही पढ़ पाते ।

डॉ. जलालुद्दीन शिकायत करते हैं, उन्होंने बच्चों को इतना कमतर आंक रखा था कि लिखना तो हम उन्हें सिखाते ही नहीं थे । हमने बच्चों में लेखन क्षमता भी विकसित की । अब बच्चों में पढ़ने की बेहद मांग है । ब्रॉक ने हर कक्षा में तीन-चार सौ किताबें रखी हुई हैं जिन्हें बच्चे परस्पर आदान-प्रदान से पढ़ रहे हैं । पक्षियों के संसार की किताबों की एक शृंखला है, वह भी रखी जा सकती है ।

(यह टिप्पणी बांग्लादेश की एक गैर सरकारी संस्था के विद्यालयों में प्रयुक्त भाषा शिक्षण विधि पर थी । इस विधि में बच्चों को बहुत समय तक पूरे शब्द पढ़ना सिखाया जाता है और आशा की जाती है कि इससे बच्चा नये शब्द स्वयं पढ़ना आरंभ करेगा । - संपादक)

पहली कक्षा में सही और प्रवाहपूर्ण भाषा बच्चे को आनी चाहिये । भाषा में प्रवाह तभी आता है जब बच्चे का अभ्यास और शब्द-भंडार बढ़ता है । एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा निर्मित तीसरी कक्षा की पुस्तक में लगभग दसियों हजार शब्द हैं । इनमें से 6 हजार शब्दों का सिर्फ एक बार प्रयोग हुआ है । इससे तो हम भाषा नहीं सिखा सकते । बंगला देश में किये शोध के आधार पर हम कह सकते हैं कि बच्चे की खुद सीखने की क्षमता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है । बच्चों में भाषा सीखने की अपार ऊर्जा है । हमने बच्चों की इस क्षमता को बहुत कम करके आंका हुआ है ।

वर्ण-पद्धति और शब्द-पद्धति से शिक्षण पर चर्चा करते हुए डॉ. जलालुद्दीन ने बताया कि वे 'मिश्रित पद्धति' प्रयुक्त करते हैं । उनके अनुसार वर्ण पद्धति और 'देखो और बोलो' पद्धति का कोई क्रम आवश्यक नहीं है, ये समानान्तर चल सकते हैं । 'देखो और बोलो' शब्द पद्धति (लोगोग्राफिक मेथड) है जिसमें शब्द सिखाना है । लेकिन हमें आना है - 'वर्ण विन्यास पद्धति' (आर्थोग्राफिक मेथड) में, जिसमें हम वर्ण जानते हैं, शब्द की संरचना जानते हैं और शब्द को अर्थ सहित पढ़ सकते हैं । यह वर्ण-विन्यास का चरण है। शब्द से वर्ण-विन्यास में संक्रमण के बीच ही कहीं वर्ण-पद्धति आती है, इसलिए हम तीनों पद्धतियों को एक साथ इस्तेमाल करते हैं। हम तस्वीर दिखाकर शब्द को सिखाते हैं । कहानी कहते हैं, बच्चे में रूचि जागृत करते हैं, शब्द-भण्डार में लाते हैं, उच्चारण के साथ वह वर्ण में आ जाता है, यह समानान्तर चलता है, तभी वर्ण - विन्यास में आ सकते हैं । हालांकि यह जटिल दिखता है लेकिन हर पाठ की पृष्ठभूमि में यह सिद्धांत व्यवस्थित रूप से मौजूद रहता है ।

'शब्द-पहचान' की सतही समझ पर एतराज करते हुए जलालुद्दीन कहते हैं, जैसे फल,

भाषा–शिक्षण का मतलब भाषा–कौशल का विकास तो है ही, लेकिन यह एक व्यापक प्रक्रिया है । यह बच्चे का समृद्ध मौखिक संस्कृति से लिखित संस्कृति में संक्रमण है । यह संक्रमण बहुत कठिन है और यदि यह प्राथमिक स्तर पर ठीक से सम्पन्न नहीं होता तो बच्चा आगे जाकर भाषा के क्षेत्र में असफल हो जाता है ।

सृजनात्मक पठन तब तक संभव नहीं है जब तक कि बच्चा स्वतंत्र सृजनात्मक तरीके से सोचना और लिखना शुरू नहीं करता है। लेखन के लिए बच्चे को तैयार करने के लिए उसे मौखिक संप्रेषण में सक्षम बनाना होगा । बच्चा अपने भाव और सोच को जब तक ठीक से मुखरित नहीं कर पायेगा, तब तक सुगठित रूप से लिखने के लिए तैयार नहीं हो सकता । इसलिए बच्चे अपने विचार को व्यवस्थित रूप से मौखिक संप्रेषण में व्यक्त कर सके, उन्हें लेखन से जोड़ते हैं और उनके पढ़ने को समृद्ध करते हैं ।

फ ल - यह ध्वनि भी बच्चे के पास नहीं है, शब्द भी नहीं है, इसलिए फल महज उसके लिए स्वस्ति का चिन्ह है । फल के साथ एक आम या सेब रख देते हैं । ये फल की तस्वीर है, प्रतीक है । जब तक बच्चा ध्वनि के साथ फ और ल के छोटे-छोटे प्रतीकों को चिन्हित नहीं करता, वह वर्ण-विन्यास नहीं है । यह शब्द पहचान नहीं है ।

प्रौढ़ साक्षरता में 'देखो और बोलो' पद्धति आयी जिसमें शब्द से वाक्य शुरू किया था । ऐसा सोचा गया था कि दो तीन सप्ताह में वे शब्द तोड़ कर अक्षर में जायेंगे । फिर अक्षर से शब्द बनायेंगे - ये सब करके पूरी वर्णमाला उन्हें सिखा दी जायेगी । लेकिन ऐसा कभी नही होता है क्योंकि वर्णमाला को पढ़ाने की पद्धति अलग है ।

एक श्रोता द्वारा यह पूछे जाने पर कि बोलने में एक इकाई शब्द है, लिखने में वर्ण- आप किसे ज्यादा महत्व देंगे ? डॉ. जलालुद्दीन ने कहा - हम ध्वनि को ज्यादा महत्त्व देते हैं । उन्होंने कहा कि प्राथमिक शिक्षा में भाषा शिक्षण पर इधर जो आधारभूत अनुसंधान हुआ है, वह भी यही साबित करता है । अंग्रेजी भाषा शिक्षण में ध्वनि विज्ञान होता था, उसका मतलब होता है 'ग्राफिक फॉनिम कॉरेस्पोंडेंस' और उसके साथ तीव्र ध्वनि संचेतनता अर्थात विभिन्न ध्वनियों में अंतर और उसकी परस्पर संबद्धता, दृश्य शब्द और उच्चरित शब्द की सम्बद्धता, ध्वनि स्मृति और दृश्य स्मृति की सम्बद्धता ।

बच्चा सोचने में समर्थ होता है । वह बाहर की चीजों को भीतर के चिंतन से जोड़ सकता है । भाषा सोच को प्रतीक में ढ़ालने की प्रक्रिया है, यह प्रतीक एक शब्द, चित्र, लय और कोई आंगिक भंगिमा अथवा गणित का अंक हो सकता है – जो चिंतन को अभिव्यक्त करता है । हमने ऐसे तीन–चार उदाहरण लिये कि चिंतन के साथ बाह्य–वस्तु को कैसे संबंद्ध करें ।
इस तरह के कुछ अभ्यासों के बाद वस्तु के सतही, उपयोगितावादी हिस्से को अलग करके उसे सोच से जोड़ा जा सकता है । वस्तु के परोक्ष और दूरस्थ संदर्भ सामने आते हैं । यह बोध के लिए आवश्यक है ।

पिछले वर्षों में स्मृति के विकास के साथ साथ संज्ञानात्मक विज्ञान में जो विकास हुआ है, उस पर अलग से एक सेमिनार की जरूरत है । इसमें भाषा शिक्षण के नये विज्ञान पर चर्चा हो, अक्षर को क्यों पढ़ायेंगे, ध्वनि क्यों और कैसे पढ़ायेंगे ? इसमें नव-साक्षर को सशक्त करने, पाठक के सशक्तिकरण और उसे वैश्विक शब्द प्रभाव पद्धति से लैस किये जाने की आवश्यकता है । संदर्भ से शब्द का अभिप्राय कैसे खुलता है ? संदर्भ तभी साफ होगा, जब दो-तीन शब्द एक साथ पढ़ लेंगे ।

यह बहस इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा और आस्ट्रेलिया इन चारों अंग्रेजी भाषी राष्ट्रों में चल रही है और वहां ध्वनि-विज्ञान को पुनर्प्रतिष्ठित करने और बच्चों में नवीन ध्वनि चेतना विकसित करने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है । और इसे समग्र भाषा पद्धति और 'देखो और बोलो' पद्धति में समाविष्ट किया गया है । इधर के शोधों में ऐसे प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं जो यह बताते हैं कि ध्वनि सचेतनता ने पढ़ने की शुद्धता और प्रवाह में वृद्धि होती है ।

गणित शिक्षण

गणित-शिक्षण के नये क्षेत्र पर बोलते हुए डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि गणित-शिक्षण का उद्देश्य संबंधों की समझ और तार्किकता का विकास करना है । ये जो चिंतन और आलोचनात्मक चिंतन की मानक व्यावहारिक प्रक्रिया है उसको हम गणित के सहारे रहस्योद्घाटन के तरीके से सामने ला सकते हैं ।

डॉ. जलालुद्दीन ने एक उदाहरण रखते हुए बताया कि चूंकि हम बच्चों को उस तरह पढ़ाते नहीं हैं इसलिए वे मानसिक रूप से गणनाएं करने में उतने दक्ष नहीं हैं, जबकि लिखित प्रक्रियाओं में वे अपेक्षाकृत सक्षम हैं ।

उन्होंने कहा कि भारत में हमने नयी शिक्षा नीति के प्रभाव में पहाड़ों को याद करने की प्रथा को त्याग दिया है । इससे मानसिक गणना में बहुत मदद मिलती है । इसलिए हमने पहाड़ों को गाकर संगीतमय तरीके से याद करने की प्रथा को पुनर्स्थापित किया है । छंद के साथ, नृत्य के साथ गिनती-पहाड़े याद करना आनंददायी शिक्षण है, जो गणित में होना चाहिए । कोई भी सवाल पूछा जाये उसका उत्तर आपके दिमाग में या आपकी अंगुलियों पर होना चाहिए । पर उससे पहले हमने गुणा की अवधारणा एवं पहाड़े बनाना सिखाया ।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमें कब अंगुलियों का गिनती के लिए उपयोग करना चाहिए और कब नहीं ? कब इसे प्रोत्साहित करें और कहां हतोत्साहित ? हम यह पहली कक्षा में शुरू के तीन माह तक कराते हैं । ये जो कंकड़ों से पढ़ाते हैं, तीलियों से चीजें कराते हैं, यदि यह सब दो-तीन सप्ताह से ज्यादा कराया जाता है तो ये इस पद्धति का दुरुपयोग है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि मेरा मकसद बच्चे को ठोस वस्तु से अमूर्त संख्या की ओर लाना है । जब वह आंख बंद करे तो उसे संख्या का कोई संगत रूप दिखाई दे । इसलिए मैंने जानबूझकर 'अबेकस' का उपयोग किया था, अबेकस का मेरा उपयोग ठोस से अर्ध-अमूर्त पर संक्रमण के मकसद से था । अबेकस में आप स्थानीय मान जितना सही तरह से दिखा सकते हैं, बड़ी संख्याओं में वैसे नहीं सिखा सकते । न ही इसे तीलियों व कंकड़ से वैसे सिखाया जा सकता है ।

डॉ. जलालुद्दीन ने बताया कि एक साल के लिए वे अबेकस का प्रयोग करते हैं । बच्चे जब बड़ी-बड़ी संख्याओं का जोड़ना-घटाना सीख लेते हैं, गुणा और भाग में वे अबेकस का प्रयोग नहीं करते । अबेकस के चार चीजों के लिए प्रयोग करते हैं । (1) स्थानीय मान समझाने के लिए (2) बड़ी संख्याओं की प्रणाली और दहाई के लिए (3) जोड़-बाकी के लिए और (4) हासिल के लिए। अन्यथा पहली और दूसरी कक्षा में ये अवधारणांए ठीक से स्पष्ट नहीं होतीं । वे कहते हैं कि अबेकस का यांत्रिक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए । लेकिन जहां तक बच्चे जल्दी सीख सकते हैं, अवधारणाएं साफ होती हैं और ज्यादा स्थायी रह सकती हैं, वहां तक इसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। सतही सफलता से अवधारणा पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है ।

पहली कक्षा में सही और प्रवाहपूर्ण भाषा बच्चे को आनी चाहिये । भाषा में प्रवाह तभी आता है जब बच्चे का अभ्यास और शब्द-भंडार बढ़ता है । बंगला देश में किये शोध के आधार पर हम कह सकते हैं कि बच्चे की खुद सीखने की क्षमता को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। बच्चों में भाषा सीखने की अपार ऊर्जा है । हमने बच्चों की इस क्षमता को बहुत कम करके आंका हुआ है ।

भाषा शिक्षाक्रम और पाठ्य-पुस्तकें

भाषा को डा. जलालुद्दीन बहुत व्यापक फलक में लेते हैं । भाषा-संरचना के शिक्षण में भी उनका यही आग्रह रहता है । वे मानते हें कि भाषायी क्षमता की बहुत अहमियत है क्योंकि प्राथमिक शिक्षा के समूचे शिक्षाक्रम पर यह सर्वत्र आच्छादित है, शब्द से लेकर चिंतन तक ।

डॉ. जलालुद्दीन उदाहरण से इस बात की पुष्टि करते हैं । उन्होंने स्वाधीनता के 50 साल पर बच्चों से बात की । बच्चों ने बताया कि स्वाधीनता का मतलब है 15 अगस्त । उन्होंने बच्चों से बात कहा कि स्वाधीनता पर एक वाक्य बनाओ जिसमें 15 अगस्त न हो । बमुश्किल एक बच्चे ने कहा - स्वाधीनता मतलब स्वतंत्रता । फिर पूछा गया,इसमें 50 साल का क्या मतलब है ? तब 1947 आ गया कि तब हमें आजादी मिली । आजादी किससे, किसने हमें आजाद किया ? बच्चों ने बताया- अंग्रेजों से । अंग्रेज कहां से आये ? बच्चों ने बताया - इंग्लैण्ड से । अब बच्चों से मानचित्र मंगवाया गया । उनसे कहा गया कि वे इंग्लैण्ड ढूंढ़ें, नक्शे में भारत की राजधानी दिल्ली कहां हो सकती है - यह देखें । इस तरह आप बच्चों को एक साथ भाषा, इतिहास और भूगोल पढ़ा रहे हैं ।

तब बच्चों से पूछा गया कि अंग्रेजों ने बाहर से आकर हिन्दुस्तान पर दखल कैसे कर लिया? बच्चों ने सोचा, तब एक बच्चे ने कहा हमारे लोग आपस में लड़ते थे इसलिए । तब बच्चों से पूछा गया कि हिन्दुस्तान भी तो इतना बड़ा देश है । हमने बंदूक लेकर आसपास के देशों पर कब्जा क्यों नहीं कर लिया ? बच्चों ने सोचा और दृढ़ता से कहा - नहीं, हम नहीं करते ऐसा । फिर बच्चों से कहा गया कि यदि हम अंग्रेजों की जगह होते, हमारे पास हथियार होते तो क्या हम ऐसा करते? एक बच्चे ने कहा कि अंग्रेजों ने आकर हमारा सारा माल ले लिया, लेकिन हम ऐसा नहीं करते। सभी बच्चों ने एक नैतिक पक्ष दृढ़ता से अख्तियार कर लिया । हम ऐसा नहीं करते क्योंकि हमें

पिछले वर्षों में स्मृति के विकास के साथ साथ संज्ञानात्मक विज्ञान में जो विकास हुआ है, उस पर अलग से एक सेमिनार की जरूरत है । इसमें भाषा शिक्षण के नये विज्ञान पर चर्चा हो, अक्षर को क्यों पढ़ायेंगे, ध्वनि क्यों और कैसे पढ़ायेंगे ? इसमें नव-साक्षर को सशक्त करने, पाठक के सशक्तिकरण और उसे वैश्विक शब्द प्रभाव पद्धति से लैस किये जाने की आवश्यकता है । संदर्भ से शब्द का अभिप्राय कैसे खुलता है ? संदर्भ तभी साफ होगा, जब दो-तीन शब्द एक साथ पढ़ लेंगे ।

ऐसा नहीं करना चाहिए । तो हमने देखा कि एक साधारण पोस्टर - 'स्वाधीनता के 50 वर्ष' से हम कितनी सारी चीजें पढ़ा सकते हैं ।

असल में हम बच्चों को दो-चार वाक्य पढ़ाते हैं । डॉ. जलालुद्दीन ने कहा कि बच्चे के पास अपने अनुभव एवं अर्जित ज्ञान होता है । जो ज्ञान उसका पहले से है उस को जानकर उसके आधार पर हम जो नये अनुभव देते हैं और वे उस के पूर्व अनुभवों एवं ज्ञान से जुड़ जाते हैं। यही सीखना है । और ये जो नये अनुभव को पुहराने अनुभव और ज्ञान से जोड़ने का तरीका है यह उचित शिक्षण-विधि है । कोई चीज दी, उस पर सवाल जबाव दिये और कहा, याद कर लो- यह दूसरा ढंग है शिक्षण का, जो कारगर नहीं होता ।

शिक्षण की पूरी दुनिया बच्चे को अर्थ और बोध कराने की दुनिया है । बच्चे के पुस्तक की दुनिया में संक्रमण की प्रक्रिया है । भाषा इस प्रक्रिया का माध्यम है । और पुस्तक बच्चे की भाषा को समृद्ध नहीं करती बल्कि बच्चा भी पुस्तक की भाषा में व्यक्त विचार को समृद्ध करता है। ये प्रक्रिया कक्षा में घटित होते हुए देखी जा सकती है ।

शिक्षण की पूरी दुनिया बच्चे को अर्थ और बोध कराने की दुनिया है । बच्चे के पुस्तक की दुनिया में संक्रमण की प्रक्रिया है। भाषा इस प्रक्रिया का माध्यम है । और पुस्तक बच्चे की भाषा को समृद्ध नहीं करती बल्कि बच्चा भी पुस्तक की भाषा में व्यक्त विचार को समृद्ध करता है। ये प्रक्रिया कक्षा में घटित होते हुए देखी जा सकती है ।

डॉ. जलालुद्दीन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं चाहे वे सरकारी किताबें हों, या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की किताबे हों या राजस्थान पाठ्यपुस्तक मण्डल की अथवा भले ही आप खुद किताबें बनायें, अन्ततः उन किताबों की सीमाएं हैं । और आप एक ही पुस्तक हरेक को पढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं । तो यह शिक्षाक्रम को लेकर, पाठ्यपुस्तकों को लेकर जो झगड़ा हम कर रहे हैं, वह निरर्थक है । मुख्य सवाल शिक्षण-विधा (पेडागॉजी) का है । उस पर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं । हम शिक्षण-विधा की अपेक्षा शिक्षाक्रम और पाठ्यपुस्तकों को ज्यादा प्रभावशाली मानते हैं ।

डॉ. जलालुद्दीन बताते हैं कि पुस्तकों की सीमाएं स्वीकार करते हुए भी हम इन्हें पढ़ाते हैं। सीमाओं के बावजूद हम उनसे मदद ले सकते हैं । जिन स्वयंसेवी संगठनों से डॉ. जलालुद्दीन सम्बद्ध हैं, वे संगठन बंगलादेश के राष्ट्रीय शिक्षाक्रम को मानते हैं । इस राष्ट्रीय शिक्षाक्रम की भी सीमाएं हैं । हमने स्वयंसेवी संगठनों को अपनी बात समझाने की कोशिश की है । बहुत-सी पूरक शिक्षण सामग्री तैयार करायी गई है, बहुत-सी पाठ्य सामग्री तैयार की है । इस तरह की शिक्षण सामग्री को ये संगठन सरकारी पाठ्यपुस्तकों की तुलना में ज्यादा तजरीह देते हैं । डॉ. जलालुद्दीन पाठ्यपुस्तकों की अहमियत, इनके वर्चस्व को नहीं मानते बल्कि इन्हें एक उदाहरण के तौर पर लेते हैं । डॉ. जलालुद्दीन कहते हैं ज्यादातर शिक्षण सामग्री हम बच्चों के साथ बनाते हैं । बच्चों की एक पीढ़ी के अनुभव से बनायी सामग्री बच्चों की दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित हो जाती है । शिक्षाक्रम की एक नयी व्याख्या सबने स्वीकार की है । बच्चे स्वयं कक्षा में सीखने का एक नया वातावरण रच रहे हैं । शिक्षाक्रम को हमने शिक्षक से बच्चे में हस्तांतरित कर दिया । बच्चों की सीखने की इच्छा ने शिक्षाक्रम को विस्तार दिया है । पहले बच्चे वो पढ़ते थे जो शिक्षक पढ़ाता था, अब नये स्कूल में शिक्षक बच्चों का मददगार है ।

बच्चे शिक्षक–प्रशिक्षण के प्रणेता–स्रोत हैं । इससे हमने शिक्षण–प्रक्रिया का क्रम उलट दिया । बच्चों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण–प्रशिक्षण का वातावरण बदल दिया । इस सोच ने कक्षा का माहौल बदल दिया । नये शिक्षकों के प्रशिक्षण में कक्षा पृष्ठभूमि का काम कर रही है । शिक्षक कक्षा के नये माहौल से सीखता है । हम अलग से शिक्षक को बतायें, ये करिये, वो करिये–उसका कोई फायदा नहीं है । जब तक शिक्षक खुद घटित होते हुए और स्वयं करके नहीं देखेगा कि क्या और कैसे होगा, इसे कैसे करते हैं– तब तक वह इस नये सोच को आत्मसात नहीं कर पायेगा ।

प्रशिक्षण में हम इन शिक्षकों से चाहते हैं, वे जाकर बच्चों से बात करके देखें कि उनका सोचने का ढंग क्या है । इसका उन पर बहुत असर पड़ता है । इससे बच्चे शिक्षक के लिए नये स्रोत बन जाते हैं । बच्चे शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रेरणा-स्रोत हैं । इससे हमने शिक्षण-प्रक्रिया का क्रम उलट दिया । बच्चों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षण-प्रशिक्षण का वातावरण बदल दिया । इस सोच ने कक्षा का माहौल बदल दिया । नये शिक्षकों के प्रशिक्षण में कक्षा पृष्ठभूमि का काम कर रही है । शिक्षक कक्षा के नये माहौल से सीखता है । हम अलग से शिक्षक को बतायें, ये करिये, वो करिये-उसका कोई फायदा नहीं है । जब तक शिक्षक खुद घटित होते हुए और स्वयं करके नहीं देखेगा कि क्या और कैसे होगा, इसे कैसे करते हैं- तब तक वह इस नये सोच को आत्मसात नहीं कर पायेगा । ◆